IJESRR
International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Sep- Oct- 2018, Volume-5, Issue-5
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

आज के भारत में पंचायतीराज व्यवस्था के महत्व का एक अध्ययन

डॉ नवीन कुमार

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय बलुवाकोट, पिथोरागढ उत्तराखंड।

सारांश

भारत की पौराणिक कथाएं पंचायतों से सम्बन्धित उदाहरणों से भरी है। भारत के प्रत्येक समय में पंचायतों का उल्लेख आज तक हमें मिलता है। स्वतन्त्र भारत में पंचायतों की स्थापना के समय भी महसूस किया गया कि इस पुरानी परम्परा में सुधार कर पुनः इसे लागू किया जाना चाहिये। प्राचीन भारत में पंचायतें राजनैतिक रूप से आम जनता के अधिक करीब थी, क्योंकि केन्द्र की सत्ता लोगों से बहुत दूर होती थी। इसी लिए क्षेत्रीय पंचायतें अपने प्रशासनिक व न्यायिक निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र थी। यह पंचायतें समाज व धर्म की रक्षा के लिए कार्य करती थी। हजारो वर्षों से भारत गाँवों का देश रहा है। इसकी तीन चौथाई जनसंख्या गांवों में निवास करती रही है। अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों की सलाह पर चलना तथा बडेबूढों तथा लोकप्रिय जनप्रतिनिधियों मनुष्यो में प्राचीनता की बात पर अमल करना, मनुष्यों की प्राचीन काल से प्रवृत्ति ही रही है। भारत में प्राचीन काल से ही पंचायतें स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के रूप में भी स्वत्रंतंत्र रूप से भी कार्यरत रहती थी। इन्हें ग्रामीण सरकारें कहते थे। प्रत्येक गांव की एक पृथक पंचायत होती थी जो पूरे गांव का राजनैतिक व सामाजिक शासन चलाती थी।

मुख्य शब्द ग्रामीण पंचायतीराज जनप्रतिनिधि व पंच परमेश्वरीय रूप आदि

पंचायतीराज व्यवस्था की परिभाषा

शाब्दिक दृष्टि से पंचायतीराज शब्द हिन्दी भाषा के दो अलग अलग शब्दों पंचायत और 'राज' से मिलकर बना है, जिसका संयुक्त तात्पर्य पांच जनप्रतिनिधियों के समूह के शासन से ही होता है। भारत में प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों में भी 'पंचायत' अथवा 'पंचायती' शब्द को परिभाषित किया गया। उनके अनुसार पंचायत' शब्द संस्कृत भाषा के पंचायतन' शब्द से पैदा हुआ है। संस्कृत भाषा के ग्रन्थों के अनुसार किसी आध्यात्मिक पुरूष सहित पांच पुरूषों के समूह अथवा वर्ग को पंचायतन के नाम से सम्बोधित किया जाता है। गांधी जी के अनुसार पंचायत शब्द का शाब्दिक अर्थ ग्रामवासियों द्वारा चयनित पांच जनप्रतिनिधियों की सभा से होता है। न्याय तथा अन्य मामलों में निष्पक्ष राय एवं व्यवस्था की दृष्टि से यह एक आदर्श प्रणाली रही है।[1] इस निष्पक्ष न्याय व्यवस्था के कारण ही इसे पंच परमेश्वर का दर्जा दिया गया है। गांवों में विवादों का निपटारा सार्वजनिक महत्व, धर्मशाला आदि का निर्माण व देखरेख के कार्य गांव के प्रमुख व्यक्ति मिलकर करते थे। गांव की जनता निष्पक्ष तथा योग्य व्यक्ति को पंच चुन लेती थी यह पांच व्यक्ति ही मिलकर न्याय, तथा अन्य कार्यों की व्यवस्था करते थे। यह पाँच व्यक्ति मुख्य रूप से सवर्ण समाज से ही होते थे।[2]

प्रस्तावना

पंचायते प्राचीन समय से ही भारत के ग्राम्य जीवन की अभिन्न अंग और महत्वपूर्ण इकाइयाँ रही है। पंच परमेश्वर व्यवस्था भारत की सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति की श्रेष्ठतम एक अभिव्यक्ति है। यह भारतीय समाज का साध्य भी है, और साधन भी समस्या को जानना, और फिर यही पर उसका समाधान हो जाना इस व्यवस्था का महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। भारत की यह पंच परमेश्वरीय व्यवस्था जुडाव में विश्वास रखती है। सहजीवन और सहअस्तित्व भारतीय संस्कृति का मूल तत्व भी है। सहजीवन अर्थात् साथ साथ जीना, सहअस्तित्व यानी कि साथ साथ होना।[3] मनुष्य ही नहीं बल्कि समस्त प्राणियों का जीवन एक दूसरे पर आधारित भी होता है, अगर कोई यह सोचे कि उसका अस्तित्व किसी के अस्तित्व को नष्ट करके सुरक्षित होगा तो वह नितान्त असम्भव ही लगता है। स्थानीय शासन का अध्ययन ग्राम शासन व्यवस्था के अध्ययन के अभाव में संभव नहीं है। इसका कारण यह है कि संप्रति स्थानीय शासन प्रक्रिया का विकास ग्राम शासन

व्यवस्था के कारण ही हुआ है। प्राचीन काल में राजनैतिक प्रशासकीय व्यवस्था के लिए राज्य ग्रामों में विभाजित रहते थे अथवा ग्राम ही तत्कालीन राजनीति में राज्य संबंधी संगठनों के प्रमुख भाग लेते थे। इस संभावना की पुष्टि वैदिक साहित्य से भी होती है।[4] ग्राम शब्द ऋग्वेद में भी आया है। संभवतः इस प्राचीन काल में बड़े बड़े नगरों अथवा पुरों का निर्माण नहीं हुआ था और हुआ भी था तो उनकी संख्या अति न्यून थी तथा उनका स्थान भी नगण्य था। ऋग्वेद में ग्रामों की समृद्धि के लिए तो प्रार्थना की गई है किन्तु नगरों अथवा पुरों अथवा पुरों का कदाचित ही कहीं उल्लेख हुआ हो। कौटिल्य का कथन है कि राज्य में ग्रामों के दल बनाये जाने चाहिए. प्रत्येक दल में एक मुख्य नगर (बस्ती) या दुर्ग होना चाहिए, दस ग्रामों के दल को संग्रहण, दो सो ग्रामों को खाईटिक और चार सो ग्रामों के दल को द्रोणमुख कहा जाना चाहिए तथा आठ सौ ग्रामों के मध्य को स्थानीय होना चाहिए।[5] मनु ने भी इसी प्रकार कहा है कि दो, तीन या पांच ग्रामों के बीच में राजा को रक्षकों का एक मध्य स्थान नियुक्त करना चाहिए। इसको जुल्म कहा गया है। इसी प्रकार एक सौ ग्रामों के बीच में संग्रह होता है। ग्रामों में अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए। राजा को किसी मंत्री द्वारा इन अधिकारियों के कार्य एवं उनके पारस्परिक कलह आदि की देखभाल करनी ही चाहिए।[6]

वैदिक साहित्य में भी ग्रामों से संबंधित मुख्य व्यक्ति ग्रामणी ग्राम प्रमुख या मुखिया का उल्लेख हुआ है। ग्राम का मुखिया ग्रामणी, ग्रामाधिपति, ग्रामिक, आदि कहलाता था। ग्रामणी का जिस रूप में परिचय प्राप्त होता है वह महत्वपूर्ण है। ग्रामणी की गणना रत्नियों में होती थी। साधारणतया मुखिया ब्राह्मणेतर जाति का होता था और संभवतः वैदिक काल में क्षत्रिय तथा कभी कभी महत्वाकांक्षी वैश्य भी मुखिया होता था। आगे चलकर वह केवल ग्राम का प्रभावशाली व्यक्ति रह गया। मुखिया ग्राम नेता को डाकुओं, चोरों एवं राज्य कर्मचारियों से ग्रामवासियों की पिता के समान रक्षा करनी पड़ती थी।[7] ग्राम मुखिया लोगों पर अर्थदण्ड भी लगा सकता था जब मुखिया गांव के काम से बाहर जाता था तो बारीबारी से गांव का कोई न कोई जन उसके साथ अवश्य जाता था जो ऐसा नहीं करता था उसे एक पण या 1/2 पण का दण्ड देना पड़ता था।[8] यदि किसी को ग्राम मुखिया बिना किसी अपराध के उसने चोरी या बलात्कार न किया हो तो भी निकाल दे तो उन्हें 24 पण का दण्ड देना पड़ता था। मुखिया ही ग्राम सभा की बैठक आमंत्रित करता था और प्रत्येक ग्राम सभा अपना विधान स्वयं बनाती थी। गाम सभायें स्वनिर्मित विधान में संशोधन भी करती थी। ग्राम सभा की पंचायत या कार्यकारिणी सभा के सदस्यों का चुनाव चिट्ठी डालकर किया जाता था। कार्य की दृष्टि से ग्राम पंचायत पर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। दक्षिण भारत के कई उल्लेखों से स्पष्ट है कि वह भूमि कर वसूल करती थी।[9] अकाल या अन्य संकट के समय राज्य लगान में कुछ छूट प्रदान करता था या माफ कर सकता था ऊसर भूमि पर ग्राम पंचायत का स्वामित्व था वह उसको बेच सकता था। दीवानी मामलों में पंचायत के अधिकार की सीमा निश्चित न थी हजारों रुपये की सम्पत्ति के झगड़ों को वह तय कर सकती थी।[10] स्मृतियों का कथन है कि पंचायत का निर्णय राजा को मान्य होना चाहिए क्योंकि न्याय से संबंधित अधिकार उसको (पंचायत) द्वारा राजा को प्रदत्त थे। परंतु इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. के. पी. जायसवाल के अनुसार प्राचीन काल में राष्ट्रीय जीवन का स्वरूप सभाओं और लोकप्रिय संस्थाओं द्वारा व्यक्त होता था इस प्रकार समिति हमारे पूर्वजों की महती संस्था थी।[11] जबकि एस के मालवीय का विचार है कि इन सभाओं और संस्थाओं से संबंधित सम्पूर्ण तथा विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। विशेष कठिनाई ग्रामीण स्तर की जानकारी में है। इसी प्रकार का विचार प्रकट करते हुए भी राधाकुमुद मुकर्जी ने भी स्वीकारा किया है। कि लोकप्रिय स्थानों निकायों की स्थित के संबंध में मूल ग्रन्थों के अधिकारी टीकाकारों में मतभेद है। इस कारण मूल पारिभाषिक शब्दों का अर्थ निश्चित नहीं हो पाता। इन्होने कुल, गण, जाति,, व्रत, श्रेणी, निगम, सुमना, संभूयसमुत्थान, परिषद और कर्ण, इन प्रसिद्ध शब्दों का उल्लेख किया है। उत्तर वैदिक काल तक भारतीय शासन का विस्तृत विवेचन उपलब्ध नहीं है।[12] फिर भी राजनैतिक शासन व्यवस्था में राजा और मंत्रिपरिषद का उल्लेख मिलता है। भारत में ई.पू. तीसरी शताब्दी में भी शासन कार्यालयों का न्यूनाधिक उल्लेख मिलता है। प्राचीन शासन पद्धति नृपतंत्रीय होते हुए भी स्थानीय स्तरों पर इसका विभाजन था। प्रान्तों के अधिकारी स्थानीय अधिकारियों के परामर्श से प्रान्त की स्थिति केन्द्रीय सरकार को बताते थे। स्थानीय संस्थायें केन्द्रीय संस्थाओं से पूर्णतः स्वतंत्र थी।[13] कार्य के अनुसार उनकी स्वायतता रहती थी। जिले को उस समय आहरणी राष्ट्र. विषय सहसंग्राम आदि नामों से जाना जाता था। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि स्थानीय ग्राम शासन चलता था। केन्द्र में चाहे जो भी शासन या शासक हो, उससे उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। ग्राम का शासन स्वतः संचालित था। प्रायः ग्राम समुदाय एवं नगर परिषदों का प्राचीन स्वरूप छोटे गणतंत्र के रूप में था और उस समय सामान्य लोगों की भी इच्छा का आदर किया जाता था। आक्रमण रक्षा

आदि बातों के अतिरिक्त केन्द्रीय शासक किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था, केवल एक सामान्य नियंत्रण मात्र था। ग्राम संस्थायें मानों छोटे छोटे राज्यों के रूप में कार्य करती थी। केन्द्र सरकार ने अपने बहुत से अधिकार ग्राम संस्थाओं को दे दिये थे। बहुत से माल, फौजदारी के मुकदमें उनके अधिकारो में थे भारत पर यूनानी, ईरानी, तुर्क, शक, हूण, अफगानी, तुगलक लोदी, खिलजी और मुगलो के आकगण हुए। इन आक्रमणों के पश्चात मुसलमान और मुगल शासन का देश के प्रशासनिक ढांचे पर अधिक प्रभाव पडा मुसलमान शासक कानून बनाते समय जाति विशेष का अधिक ध्यान रखते थे।[14] यद्यपि आय तथा शासन की दृष्टि से मुस्लिम शासकों की प्रशासनिक इकाइयों तक पहुंच थी तथापि राज शासन को निम्न इकाई ग्राम परिषद आदि तक उनकी पहुंच नहीं थी प्रान्त जिले और गावों को केन्द्र द्वारा नियुक्त सूबेदार अमिलगुजार मुकदम और पटवारियों के अन्तर्गत रखा जाता था। इस शासन काल में किसी प्रकार की पंचायती व्यवस्था नहीं थी। ग्रामीण स्तर पर लगान वसूल करने का कार्य मुकदम का था। पटवारी एक दूसरा प्रमुख कर्मचारी था। इस शासन काल के अन्तर्गत हिन्दू राजाओं के यहां ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय शासन विकसित था अर्थात् पंचायते न्यायपालिका तथा प्रशासनिक दायित्व निभाती थी। मुसलमानों के पतन तथा मराठों के उदय के साथ ही फिर एक बार ग्राम सरकारों का महत्व बढ़ा। मराठा सम्राट शिवाजी ने प्रशासन में पर्याप्त सुधार किया।[15] इनके प्रशासन में पाटिल एक प्रकार से ग्राम का प्रधान ही था। कुलकरणी उनका लिपिक था जो सदैव ब्राह्मण ही होता था। गांव में अपने चौकीदार, लिपिक और खजान्ची आदि हुआ करते थे। परन्तु मुगल शासन काल में पंचायती शासन व्यवस्था का पतन हुआ। गामीण शासन व्यवस्था में जमीदार या जागीरदारी का विकास हुआ था। इस प्रथा के अधीन समृद्ध किसान या तो स्वयं कर लेकर या अपने एजेन्टों से कर वसूल कर अन्य ग्रामीणों पर नियंत्रण करता था। इन अधिकारियों का बादशाह या नवाव से प्रत्यक्ष संबंध था। व्यहारतः पंचायत का क्रियाकलाप इन्हीं जमींदारों या जागीरदारों द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा और भूमिहीन मजदूरों आदि के लिए न्याय पाना कठिन हो गया था। अठाहरवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल से भारत में पाश्चात्य जातियों का शासन प्रारम्भ हुआ यद्यपि यह लोग भारत में व्यापार की दृष्टि से आये थे तथापि देश की अस्थिर परस्थितियों से प्रभुसत्ता का भी लाभ प्राप्त करने में सफल हो गये।[16] स्वायत्तशासी संस्थायें भी इनके प्रभाव क्षेत्र से वंचित न रही प्राचीन स्वायत शासन पद्धति का पतन हुआ और इसका स्वरूप शासन के लाभ को दृष्टिगत रखते हुए निश्चित किया गया। उदाहरणार्थ 1687 में मद्रास में एक नगर निगम की स्थापना की गई जिसका स्वरूप भारतीय की अपेक्षा ब्रिटेन में पचलित संस्थाओं के नमूने पर था। उसे कुछ कर लगाने का अधिकार दिया गया था जिससे वह नगर भवन, कारागार, स्कूल आदि बनवा सके। नगरवासियों के हित प्रतिष्ठा, शोभा, सुरक्षा आदि की व्यवस्था कर सके तथा आध्यापक आदि कर्मचारियों को वेतन दे सके। परन्तु यह प्रयोग सफल नहीं हुआ करारोपण का सर्वत्र विरोध हुआ इस प्रकार यथेष्ट साधन के अभाव में नगर निगम धीरे धीरे निर्बल होकर समाप्त हो गये।[17]एक लम्बे अन्तराल के पश्चात एक अन्य प्रयास के द्वारा 1726 में नगराध्यक्ष के न्यायालय की स्थापना की गई परन्तु इसका स्वरूप प्रशासनिक की अपेक्षा न्यायिक अधिक था। 1793 के अधिकार पत्र अधिनियम (चार्टर ऐक्ट) के द्वारा कलकत्ता, बम्बई, मद्रास में सफाई की देखभाल करने के लिए पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई। इस अधिनियम द्वारा भारत के गवर्नर जनरल को इन तीन महाप्रान्तीय नगरों के लिए शान्ति दण्डाधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार था। सन् 1712 में कामन सभा की सलेक्ट कमेटी द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट से विदित होता है कि उन दिनों गावों के राजनैतिक शासन के लिए मद्रास प्रान्त में मुखिया, मुंशी, पटेल या चौकीदार हदबन्दी करने वाला जल निरीक्षक, पुरोहित, अध्यापक ज्योतिषी आदि कर्मचारी थे और गांव के शासन की मुख्य संस्था ग्राम पंचायत थी। गांव का सारा शासन और न्याय इसी के अधीन था। टैक्स बाग. सिंचाई, भूमि विभाजन आदि कामों के लिए कमेटियां थीं और इनका चुनाव ग्रामवासी करते थे।[18] पंचायती न्याय बिल्कुल ठीक होता था सब एक दूसरे को जानते थे, इसलिए कोई झूठ न बोल सकता था। सफाई, शिक्षा, पानी की व्यवस्था, कुए तालाब, एडों, नालियों और सार्वजनिक कार्यों की व्यवस्था भी ग्राम पंचायतें ही करती थी। 1840 से 1853 के बीच नगर निगमों में निर्वाचन के सिद्धान्त का समावेश हुआ। 1852 के बंगाल अधिनियम के द्वारा बंगाल के जनपदीय नगरों में भी नगर प्रशासन का विस्तार किया गया। परन्तु यह नई व्यवस्था भी असफल सिद्ध हुई। इसका प्रमुख कारण यह था कि करारोपण प्रत्यक्ष था इसलिए उसका सर्वत्र विरोध हुआ। लोगों ने कर देने से ही इनकार नहीं किया अपितु जब जिलाधीश ने कर लगाना चाहा तो उस पर पंचायतों में अनाधिकार प्रवेश के लिए मुकदमा ही चला दिया।[19] तत्पश्चात 1950 के एक अधिनियम के अधीन अप्रत्यक्ष करारोपण का प्राविधान किया गया परन्तु यह कानून कम ही प्रान्तों में लागू हो पाया। सन् 1803 में स्थानीय शासन को प्रोत्साहन मिला और राजकीय सैनिक स्वास्थ्य आयोग ने अनेक

अधिनियम पारित कराये प्रांतीय सरकारों को नगर समितियां बनाने का अधिकार दिया गया। सफाई प्रकाश और पानी की व्यवस्था करना इन समितियों का मुख्य कार्य था। 1870 में लार्ड मेयो का प्रस्ताव पारित हुआ जिसके अनुसार शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया गया अर्थात् केन्द्र की कुछ शक्तियों प्रान्तों को दी गई और यह बताया गया कि इस प्रस्ताव का पूर्ण प्रयोग करने से स्थानीय शासन का विकास होगा, नगरीय संस्थायें प्रौढ होंगी और भारत तथा यूरोप के लोगों में घनिष्ठता बढ़ेगी। परन्तु उस समय स्थानीय शासन की स्थापना का मुख्य ध्येय ब्रिट्रिश हितों की सिद्धि थी क्योंकि विकास कार्य पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। लार्ड मेयों के प्रस्ताव में भी विकास गौण था। इसका मूल उद्देश्य अधिक से अधिक राजस्व संग्रह करने हेतु स्रोतों का पता लगाना प्रशासन में मितव्ययिता लाना ही था।[20] भारत की एक विशेषता यह भी थी कि 1871 तक जिला और स्थानीय स्तर पर जिला बोडों के स्वरूप का अस्तित्व हो गया था। यह नवीन प्रकार का प्रथम प्रयास था। यद्यपि प्रत्येक जिले के सड़क निर्माण, स्कूल औषधालयों आदि के कार्य जिला समितयों के अधिकारियों द्वारा सम्पन्न होते थे किन्तु अधिकार भिन्न भिन्न लोगों में बटे थे द लोकल रेट्स ऐक्ट 1871 के द्वारा जिलों की विभिन्न समितियों को मिलकर अधिकृत रूप से एक ही कमेटी का स्वरूप प्रदान किया गया, जिसका नाम लोकल फण्ड कमेटी रखा गया और इसको सड़क, स्केल, औषधालय आदि विभिन्न कार्यों की उपसिमितियां गठित करने का भी अधिकार दिया गया लोकल फण्ड कमेटी में कमिश्नरी, जिला और सहजिला मजिस्ट्रेट, सिविल सर्जन, पुलिस अधीक्षक, जिला अभियन्ता और उपजिला विद्यालय निरीक्षक इसके पदेन सदस्य थे। उपजिला विद्यालय निरीक्षक और जिला अभियन्ता सभी समितियो का सदस्य होने के अतरिक्त अपने विभाग के सह विभागों का भी सदस्य होता था। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सदस्य होते थे जिन्हें गैर सरकार आवासों या जिलों द्वारा तैयार करना पड़ता था। इनका चयन जिला मजिस्ट्रेट कलर की स्वीकृति के बाद करता था। स्थानीय स्वशासन का स्वरूप न तो स्थानीय था और नहीं स्वशासित। लार्ड मेयो (1869–72) के पश्चात् लाई स्पिन भारत के गवर्नर जनरल हुए। इनके काल में इस दिशा में एक नई पहल कर गई कि लोकमत को संतुष्ट करने के लिए 18 मई 1882 में स्थानीय शासन को स्वशासी बनाने वाला कानून लाया गया। उसमें यह उल्लेख था कि गवर्नर जनरल रिपन और उनकी परिषद ने राजनीतिक एवं सार्वजनिक शिक्षा आदि का विकास परम आवश्यक साधन समझकर स्थानीय स्वशासक प्रयास का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि भविष्य में इस पर स्थानीय स्थितियों और ज्ञान का प्रभाव पड़ता रहेगा जिससे प्रशासन की शक्ति बढ़ेगी। वह यह जानते थे कि आरंभ में कुछ असफलतायें आयेगी जिनके कारण यह पद्धति ही सदोश कही जायेगी किन्तु अधिकारी वर्ग यदि आत्मीय भाव से निष्ठापूर्वक कार्य करेगा तो थोड़े समय में सफलता का दर्शन होगा और उत्साह बढ़ेगा। देश में शिक्षा वृद्धि के साथ साथ योग्य व्यक्तियों की संख्या भी बढती है। स्वशासन में उनका उपयोग अति आवश्यक होता है। भौतिक समृद्धि की वृद्धि से प्रशासन का कार्यभार भी प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है। स्थानीय अधिकारी उसे दवाये जा रहे है। अतः कर्मचारियों की संख्या बढ़ाना अत्यन्त ही आवश्यक है। गवर्नर जनरल और उनकी परिषद का निःसंकोच कथन यही है कि जनता को अपना प्रबन्ध अपने हाथ में लेने के लिए प्रेरित किया जाय और समर्थ बनाने में सरकार जनता की सहायता करें इस प्रकार उन्होंने स्थानीय शासन का मार्ग दर्शन किया। इसके इस महान प्रस्ताव का सर्वत्र स्वागत किया गया। इस प्रस्ताव से स्थानीय स्वशासन को व्यवहारिक करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय बोर्डों का विस्तार करने में सहायता मिली। यह कार्य ग्रामीण लोगों के लिए सर्वाधिक एवं सर्वप्रथम निर्माणात्मक प्रयास था।

शोध विधि मेने अपने इस शोध पत्र में **वर्णनात्मक शोध पद्वति** का प्रयोग किया है। क्योकि मेरा यह शोध पत्र भारतीय साहित्यिक ग्रन्थों पर ही आधारित रहा है। इसी लिए यह शोध पद्वति इस शोध पत्र के लिए अधिक उपयुक्त रही हैं।

निष्कर्ष मेंरे इस शोध पत्र के बाद आज बहस इस बात पर होनी चाहिए कि अंग्रजो द्वारा दी गई आधुनिक न्याय की इस व्यवस्था में हम 70 वर्ष में कहां पहुचें है। क्योंकि अक्सर आज सुनने को मिलता है। कि आज की न्यायपलिका को कुछ लोग भ्रमित कर रहे है। और गरीब लोगो को न्याय मिलने में कुछ परेसानी आज हो रही है। लेकिन हमारी प्राचीन पंचायत व्यवस्था में स्थानीय स्तर पर ही समस्या को सुलझा लिया जाता था क्योकि अपराध करने वाला भी स्थानीय ही होता था और अपराध सहने वाला भी स्थानीय अधिकास कैसो में होता था इसी लिए झूट की गुजाइस ही नही होती थी इसी लिए मेरे अनुसार अंग्रेजो से पहले वाली पंचायत व्यवस्था ही ठीक थी आज की सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए कि

आज गरीब न्याय पाने के लिए अत्यन्त ही कठिन दौर से गुजर रहा है। इसे मेरे द्वारा दिए गये राजनैतिक पहलुओं पर विचार करना चाहिए। यही मेरे इस शोध पत्र का निष्कर्ष है।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 ऋग्वेद 1/11/4/1 तािा 5/54/8 (मण्डल, सुक्त मंत्र) भाष्यकार वेंकटभाव विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, पृ0 72

2 व्ही, 1/44/10, 0/62/11, 10/107/5

3 'स्थासनीय शब्द आधुनिक थाना शब्द काद द्योतक प्रतत होता है क्योंकि इसकी ध्वनि एवं अर्थ दोनों में विचित्र समता है। पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, अनुवाद अर्जुन चौबे काश्यप, हिन्दी समिति, पृ0 643

4 कौटिल्य अर्थशास्त्र (2/1) सम्पादक यौली. प्रकाशक मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, पृ0 86

5 मनुस्मृति (7/114) (अध्याय, श्लोक), सम्पादक गंगानाथ झा, इन्डियन प्रेस प्रयाग, पृ0 104

6 वही, 7/115–117

7 वही, 7/120

8 तैतिरीय संहिता (2/5/4/4) (काण्ड, पाठक, अनुवादक, मंत्र) सायण भाष्य. आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली पूना, तृतीय संस्करण), पृ0 66

9 मनुस्मृति (7/1125, 116), पूर्वोक्त तथा काटिल्य अर्थशस्त्र (3/10) पूर्वोक्त, पृ0 106

10 तैतिरीय संहिता (2/5/4/4) (काण्ड, प्रपाठक, अनुवादक, मंत्र) सायण भाष्य आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली पूना, पृ0 09

11 शुक्रनीति (2६/70–175), (अध्याय श्लोक), बम्बई, बेंकटेश्वर प्रेस प्रकाशन, पृ0 96

12 के.पी. जायसवाल, हिन्दू पालिटी, बैंगलौर, प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग कम्पनी, पृ0. 12

13 एच.डी. मालवीय, विलेज पंचायत्स इन एनसियट इण्डिया, नई दिल्ली, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी, पृ0 44

14 आरके मुकर्जी, लोकल गवर्नमेन्ट इन एनसियट इण्डया, दिल्ली. मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 64

15 कुल शब्द का अर्थ हो सकता है इतनी भूमि जो एक कुल (कुटुम्ब की जविका चला सके। पाण्डुरंग वामन काणे,

16 बृहस्पति अपरॉक, पृ0. 792–93 उद्धत धर्मशास्त्र का इतिहास, वही, 650–651

17 अनन्त सदाशिव अलतेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, इलाहाबाद, लीडर प्रेस, धर्मशास्त्र का इतिहास, अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यपन लखनऊ, हिन्दी समिति, पृ0. 647

18 भारत की उल्लेखनीय घटनायें राजतंत्र और समाज दोनों से संबंधित है। वे दोनों स्वतंत्र रूप से पथक–पृथक विकसित होते रहे है। सामाजिक संगठन में राज्य कभी भी हस्तक्षेप नहीं करता था। वह उसका बाधक नहीं अपितु साधक होने को ही आदर्श नीति समझाता था। देखिए आरके मुकर्जी लोकल गवर्नमेन्ट इन एनसियट इण्डिया दिल्ली. मोतीलाल बनारसीदास, पृ0.3.

19 यहां यह ज्ञातव्य है कि मुगल और ब्रिटिश शासन आने के पूर्व भारत में लोकतांत्रिक शासन पद्धति का विकास नहीं हुआ था परन्तु लोगों का जन सहयोगात्मक रूप से स्वशासी संस्थाओं द्वारा संचालित होता था। देखिए एक, मोरेस, जवाहर लाल नेहरू, ए बायोग्राफ, न्यूयार्क, पृ0.407

20 ए.एस. अलतेकर, स्टेट एण्ड गवर्नेमन्ट इन इनसिएन्ट इण्डिया, बनारस, पृ0. 98